ध्यान दें:

20

महावाक्य की वृत्ति का विचार

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये चार पुरुषार्थ होते है। इनमें परम पुरुषार्थ मोक्ष है। मोक्ष का तथा उसके उपायों का ज्ञान अलौकिक उपायों के द्वारा ही होता है। वहाँ पर ज्ञान में परम प्रमाण वेद ही होते हैं। ऋग्यजुसामार्थव भेद से वेद चार प्रकार के होते हैं। वेदों के द्वारा ही मोक्ष को जाना जाता है। वह मोक्ष तथा ब्रह्म के ऐक्य के ज्ञान होने पर ही सम्भव होता है उसके अलावा ओर कोई प्रकार नहीं है। यह एक्य का ज्ञान वेदों के द्वारा ही होता है। उस प्रकार का ऐक्य चार प्रकार के वाक्यों के द्वारा ही प्रतिपादित होता है। वो चार वाक्य महावाक्य कहलाते है। चारों वेदों में चार महावाक्य है ऋग्वेद में "प्रज्ञानं ब्रह्म" (3/1/3) इत.ब यह महावाक्य हैं। यजुर्वेद में "अहं ब्रह्मास्मि" (1/4/10) महावाक्य है। सामवेदे "तत्त्वमसि" यह महावाक्यं हैं तथा अथर्ववेदे "अयमात्मा ब्रह्म" यह महावाक्य सुशोभित है।

उद्देश्य

यह पाठ पढ़कर के आप सक्षम होंगे;

- अध्यारोप के विषय में ज्ञान प्राप्त करने में;
- अज्ञान किस प्रकार का होता है यह जानने में;
- अपवाद को किस प्रकार से जाना जा सकता है इस विषय को समझ पाने में;
- "तत्त्वमसि" इस महावाक्य का क्या तात्पर्य है इसका ज्ञान प्राप्त करने में;
- "तत्त्वमसि" इस वाक्य में तत् तथा त्वम् इन दोनों पदों के वाच्यार्थ को जान पाने में;
- "तत्त्वमसि" इस महावाक्य में तत् तथा त्वम् इन दोनों पदों के लक्ष्यार्थ को जान पाने में;
- "अयमात्मा ब्रह्म" इस महावाक्य का क्या तात्पर्य है जान पाने में;
- जीव और ब्रह्म का ऐक्य किस प्रकार से होता है इसका परिचय प्राप्त करने में;

20.1) पाठ विमर्श

जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य महावाक्य प्रतिपादन करते हैं। सामवेद के छान्दोग्योपनिषद् में "तत्त्वमसि"

(6/8/7) यह महावाक्य है। अखण्डार्थ प्रतिपादक वाक्य ही महावाक्य कहलाते हैं। अखण्डार्थ से तात्पर्य है जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य। अब अध्यारोपवाद तथा अपवाद के द्वारा तत् त्वम् पदार्थ को शोधन किया जा रहा है।

20.2) अध्यारोप

वस्तु में अवस्तु का आरोप अध्यारोप कहलाता है। जैस रज्जु मे सर्प का आरोप। रज्जु असर्पभूत होती है। उसमें असर्पभूतरज्जु में सर्प का आरोप अध्यारोप होता है। सच्चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्म ही वस्तु होता है। ब्रह्म के बिना अज्ञानकार्यभूत सबकुछ अवस्तु होता है।

20.3) अज्ञान

अज्ञान सद् तथा असद् दोनों के द्वारा अनिर्वचनीय होता है। अज्ञान है इस प्रकार से नहीं कह सकते हैं। कारण यह है कि यदि अज्ञान है तो किसी भी अवस्था में उसका बाध नहीं हो। लेकिन ब्रह्मज्ञान होने पर अज्ञान का बाध अर्थात् नाश हो जाता है। फिर अज्ञान असत् अर्थात् अज्ञान नहीं है ऐसा कभी भी नहीं कह सकते हैं। कारण यह है कि यदि अज्ञान नहीं है तो कभी भी अपरोक्ष उसका प्रतिभास नहीं हो। लेकिन अज्ञान का अपरोक्ष प्रतिभासरूप संसार प्रतीत होता है। इसलिए अज्ञान असत् भी नहीं है। बुद्धि से लेकर देह पर्यन्त अज्ञान का ही कार्य होता है। अज्ञान सत्त्वरज तथा तमोगुणात्मक होता है। इसलिए इसे श्वेताश्वतरोपनिषद् में इस प्रकार से कहा है।

“अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥” (4/5) इति।

निश्चित रूप से जो उत्पन्न होता है वह नष्ट भी होता है। अज्ञान कभी उत्पन्न ही नहीं होता है। इसलिए अज्ञान का नाश कभी भी सम्भव नहीं होता है। इस आशङ्का को दूर करने के लिए कहते हैं की अज्ञान ज्ञानविरोधी होता है। ज्ञान के द्वारा अर्थात् आत्मासाक्षात्कार के द्वारा अज्ञान नष्ट होता है। इसलिए भगवान श्री कृष्ण ने श्री मद्भगवद्गीता में कहा है

“दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दूरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥” (7/14) इति।

और फिर अज्ञान भावरूप होता है। भलेही अज्ञान भावरूप होता है। फिर भी ‘यह इस प्रकार से’ दिखाने में समर्थ नहीं होता है। वहाँ पर तो अनुभव ही शरण होती है। ‘मैं अज्ञ हूँ ’ मैं अद्वैत को नहीं जानता हूँ इस प्रकार का अनुभव होता है। वेदान्तसार में सदानन्दयोगीन्द्र के द्वारा कहा गया है। “ अज्ञान सद् तथा असद् के द्वारा अनिर्वचनीय त्रिगुणात्मक ज्ञानविरोधी भावरूप जो कुछ भी लोग कहते हैं, वहां होता है। जैसे मैं अज्ञ हूँ इत्यादि अनुभव से इसका पता चलता है। और ‘देवात्मशक्तिं स्वगुणैः निगूढाम्’ इस प्रकार से (श्वेताश्वतरोपनिषत्, 1/3)” इति। में कहा गया है।

20.4) अपवाद

अपवाद वस्तु में भासमान अवस्था आदि प्रपञ्च का वस्तुमात्रत्व होता है। जैसे रज्जु का विवर्त रूप सर्प होता है, वह उस रज्जु से भिन्न नहीं होता है। वैसे ही ब्रह्मरूप वस्तु का विवर्तभूत अज्ञानप्रपञ्चादि होता है। इसलिए वह ब्रह्म से भिन्न नहीं होता है। वेदान्तसार मे कहा गया है “अपवादो नाम रज्जुविवर्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववत् वस्तुविवर्तस्य अवस्तुनः अज्ञानादेः प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्वम्” अर्थात् अपवाद रज्जुविवर्त सर्प का रज्जुमात्रत्व के समान वस्तुविवर्त अवस्तु अज्ञानादि प्रपञ्च का वस्तुमात्रत्व होता है। यह

ध्यान दें:

सब चैतन्यस्वरूप ब्रह्म ही होता है। फिर भी शरीरभेद से समष्टिकारणशरीर अज्ञानोपहित चैतन्य सर्वज्ञ ईश्वर होता है। व्यष्टिकारणशरीराज्ञोनोपहित चैतन्य प्राज्ञ होता है। समष्टिसूक्ष्मशरीराज्ञानोपहित चैतन्य हिरण्यगर्भ होता है। व्यष्टिसूक्ष्मशरीर अज्ञानोपहित चैतन्य तैजस होता है। समष्टिस्थूलशरीराज्ञानोपहित चैतन्य विराट् होता है व्यष्टि स्थूलशरीराज्ञानोपहित चैतन्य विश्व होता है।

अभी अध्यारोप तथा अपवाद दोनों के द्वारा सभी का वस्तुमात्रत्व जाना। इन दोनों के द्वारा ही तत्व तथा पदार्थ में परिशुद्धि भी होती है। वाक्यार्थ ज्ञान पदार्थज्ञान सापेक्ष होता है। पदसमूह ही वाक्य कहलाता है। इसलिए पदार्थ ज्ञान से परे ही वाक्यार्थ ज्ञान होता है। अतः तत् तथा त्वम् पदार्थ आगे कहे जा चुके है।

20.5) तत्त्वमसि

20.5.1) तत्पद का वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ

लोहपिण्ड तप्त होता है तो लोहे के जलने पर लौहपिण्ड तथा अग्नि में अभेद से प्रतीति होती है। इसी प्रकार समष्टि कारण सूक्ष्म स्थूल शरीर ज्ञान समष्टि होती है। इससे उपहित चैतन्य अर्थात् ईश्वर हिरण्यगर्भ अथवा विराट् कहा जाता है।इससे अनुपहित तुरीय ब्रह्म एकत्व के कारण अवभासमान तत् पद का वाच्यार्थ होता है। समष्टिकारणशरीराज्ञानोपहितचैतन्य से समष्टिसूक्ष्मशरीराज्ञानोपहितचैतन्य से समष्टिस्थूल-शरीराज्ञानोपहितचैतन्य से ईश्वरहिरण्यगर्भवैश्वानरों का आधारभूत तुरीय चैतन्य भेद से अवभासमान तत्पद लक्ष्यार्थ होता है।

20.5.2) त्वम् पद का वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ

व्यष्टि का कारणसूक्ष्मस्थूलशरीर अज्ञान समूह होता है, इससे उपहित चैतन्य अर्थात् प्राज्ञ तैजस तथा विश्व होता है। इससे उपहित तथा तुरीय ब्रह्म के अभेद से अवभासमान त्वं पद वाच्यार्थ होता है। व्यष्टिकारणशरीर अज्ञानोपहित चैतन्य प्राज्ञ से,व्यष्टिसूक्ष्मशरीर अज्ञानोपहित तेज से, व्युष्टिस्थूलशरीर अज्ञानोपहित चैतन्य से विश्व से तुरी चैतन्य अर्थात् प्राज्ञ तैजसविश्व का आधारभूत चैतन्य भेद से अवभासमान त्वं पद का वाच्यार्थ होता है।

अब कहते हैं कि जीव तथा ईश्वर में अनेक भेद देखे जाते हैं। जीव अल्पज्ञ होता है ईश्वर सर्वज्ञ होता है। जीव अपरोक्ष होता है ईश्वर परोक्ष होता है। तो इस प्रकार से विलक्षण जीव तथा ईश्वर में कैसे तत् त्वं असि आदि वाक्य अखण्ड एक रस ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं। इस प्रकार से यह आशङ्का सत्य प्रतीत होती है। तत्त्वमसि आदि महावाक्य साक्षात् एक्य का प्रतिपादन नहीं करते है। अपितु लक्षणा के द्वारा तीनों सम्बन्ध से अखण्डार्थ के बोधक होते हैं। दोनों पदों में सामानाधिकरण, दोनों पदार्थों में विशेषण विशेष्य भाव तथा प्रत्यगात्मपदार्थों में लक्ष्यलक्षण भाव इस प्रकार से तीन प्रकार के सम्बन्ध होते है।

नैष्कर्म्यसिद्धि में सुरेश्वराचार्य ने इस प्रकार से कहा है। -

“सामानाधिकरण्यं च विशेषणविशेष्यता।
लक्ष्यलक्षणसम्बन्धः पदार्थप्रत्यगात्मनाम्॥” इति।

20.5.3) सामानाधिकरण्य सम्बन्ध

वह यह देवदत्त है, इस वाक्य में तत्कालविशिष्ट देवदत्तवाचक तत् पद का अर्थात् 'स:' (वह)इस पद का, फिर एतत् विशिष्ट देवदत्तवाचक 'अयम्' (यह) इस पद का एकदेवदत्तरूप पिण्ड में ही तात्पर्यसम्बन्ध है। अर्थात् सामानाधिकरण्य यह अर्थ है। इस प्रकार से ही "तत्त्वमसि" इस वाक्य में परोक्षत्वसर्वज्ञत्वादि विशिष्ट चैतन्यवाचक तत्पद का, फिर अपरोक्षत्व अल्पज्ञादिविशिष्ट चैतन्य वाचक त्वम् पद का एक ही चैतन्य में तात्पर्य सम्बन्ध अर्थात् सामानाधिकरण्य यह अर्थ होता है।

20.5.4) विशेषण विशेष्यभाव सम्बन्ध

जो व्यावर्तक होता है। वह विशेषण होता है। जो व्यावर्त्य होता है वह विशेष्य होता है। जो भेद का व्यावर्तक है वह विशेष कहलाता है। फिर जिसका भेद व्यावर्त्य है वह विशेष्य कहलाता है। 'इस काल से विशिष्ट तथ इस देश से विशिष्ट यह वह देवदत्त है ' यहाँ पर 'वह' अर्थात् तत्कालविशिष्ट देवदत्तरूप पिण्ड, 'यह ' अर्थात् एतत्कालविशिष्ट देवदत्तरूपपिण्ड अभिन्न जब प्रतीत होता है। तब एतत्कालविशिष्ट देवदत्त रूप पिण्ड का तत्कालविशिष्ट देवदत्तरूप पिण्ड से भेद व्यावृत्त होता है। इसलिए यहाँ पर अयम् (यह) शब्द में विशेष्यत्व होता है। फिर 'यहाँ' उस पद का व्यावर्तकत्व अर्थात् विशेषणत्व होता है। "उस काल से विशिष्ट वह यह है " यहाँ पर यह अर्थात् एतत्कालविशिष्ट देवदत्तरूप पिण्ड से तथा स: (वह) अर्थात् तत्काल विशिष्ट देवदत्तरूप पिण्ड से अभिन्न जब प्रतीत होता है तब तत्कालविशिष्ट देवदत्तरूप पिण्ड अभिन्न इसप्रकार से जब प्रतीत होता है तब तत्कालदेशविशिष्ट देवदत्तरूपपिण्ड का एतत् काल एतत् देश विशिष्ट देवदत्तरूप पिण्ड से भेद व्यावृत होता है। यहाँ पर स: इस शब्दार्थ का तत्काल तत्देशविशिष्ट भेद व्यावृत्त होता है। इसलिए स: (वह)यह शब्दार्थ विशेष्यत्व होता है। तथा अयम् (यह) यह शब्दार्थ विशेषणत्व होता है। इसी प्रकार से "तत्त्वमसि" यहाँ पर भी जानना चाहिए।

"त्वं तदसि" (तू कहता है) यहाँ पर तत् अर्थात् सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट चैतन्य से त्वम् अर्थात् अल्पज्ञत्वादिविशिष्ट चैत्यन अभिन्न इस प्रकार से जब प्रतीत होता है, तब त्वं पद वाच्य का अल्पज्ञत्वादिविशिष्ट चैतन्य तत्पदवाच्य से सर्वज्ञत्वादि विशिष्ट चैतन्य से भेद व्यावृत्त होता है। यहाँ पर त्वम्, इस शब्दार्थ का अपरोक्षत्वकिञ्चित् ज्ञत्वादि विशिष्ट चैत्यन्य का भेद व्यावृत्त होता है। इसलिए त्वं पदार्थ का विशेष्यत्व होता है। तत्पदार्थ का "तत्त्वमसि" यहाँ पर भी त्वम् अर्थात् अपरोक्षत्व अल्पज्ञत्वादिविशिष्ट चैतन्य से तत् अर्थात् परोक्षत्वसर्वज्ञत्वादिविशिष्ट चैतन्य अभिन्न होता है इस प्रकार की जब प्रतीति होती है। तब तत्पदार्थ का परोक्षत्वसर्वज्ञत्वादि विशिष्ट चैतन्य से भेद व्यावृत्त होता है। यहां पर तत् इस शब्दार्थ सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट चैतन्य का भेद व्यावृत्त होता है। इसलिए यहाँ पर तत्पदार्थ का विशेष्यत्व रूप होता है। फिर त्वम् पदार्थ का अल्पज्ञत्वादिविशिष्ट चैतन्य का विशेषणत्व होता है। इसी प्रकार से तत् तथा त्वं पदार्थो को अन्योन्यभेदव्यावर्तक के द्वारा विशेषण विशेष्य भाव होता है।

20.5.5) लक्ष्य लक्षण भाव सम्बन्ध

जो वाक्य असाधारण धर्म का प्रतिपादन करता है। वह वाक्य लक्षण होता है। असाधारण धर्मप्रतिपादक वाक्य की जो प्रतिपाद्य वस्तु लक्ष्य होती है वही लक्ष्य होती है। "सोऽयं देवदत्त:" (वह यह देवदत्त है) इस वाक्य में स: शब्द तथा अयं शब्द इन दोनों के अर्थ में तो विरुद्धांश है उनका तत्काल तत्देश विशिष्ट तत्काल देश तत्काल विशिष्टों का परित्याग से अविरुद्ध देवदत्त पिण्ड से साथ देवदत्त विशिष्ट देवदत्त वाचचक शब्द का लक्ष्य लक्षण भाव सम्बन्ध होता है। अर्थात् "सोऽयं देवदत्त:" यहाँ पर

ध्यान दें:

त्यक्त विरुद्ध स: शब्द तथा अयं शब्दों के अर्थों का लक्षणत्व होता है। अविरुद्ध देवदत्तरूपपिण्ड का लक्ष्यत्व होता है। इसी प्रकार "तत्त्वमसि" यहाँ पर तत् तथा त्वम् पदे के जो विरुद्धांश होते है। उनका परोक्षत्वसर्वज्ञादिविशिष्ट अपरोक्षत्वाल्पज्ञत्वादि विशिष्ट अंशों के परित्याग से अविरुद्ध अखण्डैकरस चैतन्य के साथ परोक्षत्व सर्वक्षत्व अपरोक्षत्व अल्पज्ञत्वादि विशिष्ट तत् तथा त्वम् पद का लक्ष्य लक्षण भाव सम्बन्ध होता है। यहाँ पर भागत्यागलक्षणा के द्वारा विरुद्धांशो के परित्याग से अविरुद्धचैतन्यमात्रत्व समझा जाता है। यह ही भागत्याग लक्षणा जहद् तथा अजहत् लक्षणा कहलाती है।

20.5.6) लक्षणा तथा उसके भेद

लक्षणा का विषय लक्ष्य होता है। लक्षणा के दो भाग होते है केवल लक्षणा तथा लक्षित लक्षणा। शक्यसाक्षात्सम्बन्ध वाली लक्षणा केवललक्षणा कहलाती है। जैस गङ्गायां घोष: (गङ्गा में कुटिया) यहाँ पर गङ्गापद वाच्यार्थ के द्वारा गङ्गाप्रवाह रूप के साथ साक्षात् संबंध तीर में केवल लक्षण है। जहाँ पर शक्यार्थ के परम्परासम्बन्ध से वाच्यार्थ से भिन्न अर्थ की प्रतीति होती है। वहाँ पर लक्षित लक्षणा होती है। जैस सिंह माणवक। यहाँ पर सिंहपदवाच्य सिहंरूप पशु होता है। उस पशु के क्रूरत्वादिसम्बन्ध के द्वारा माणवक की प्रतीति होती है।

प्रकारान्तर से लक्षणा के तीन भाग किये गये हैं। जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा और जहदजहल्लक्षणा। जहाँ पर शक्यार्थ के अनन्तर्भाव्य ही अर्थान्तर प्रतीत होता है वहाँ पर जहल्लक्षणा होती है। जैस विषं भुङ्क्ष्व। यहाँ पर विषभोजन शक्यार्थ होता है। जहाँ पर शक्यार्थ के अन्तर्भाव्य ही अर्थान्त प्रतीति होती है। वहाँ पर जहल्लक्षणा होती है। जैसे। जहर खाओ यहाँ पर विष भोजन शक्यार्थ होता है उस शक्यार्थ का अन्तर्भाव्य यह है कि शत्रु के घर में भोजन मत करो इस प्रकार से यहाँ पर भोजन की निवृत्ति लक्षित की गई है। इसलिए विषं भुङ्क्ष्व यहाँ पर जहत् लक्षणा है। जहाँ पर शक्यार्थ ही अन्तर्भाव्य ही अर्थान्तर प्रतीति करवाता है वहाँ पर अजहल् लक्षणा होती है। जैसे शुक्ल: घट: (सफेद घड़ा) यहाँ पर शुक्ल शब्द का शुक्लगुणरूप वाच्यार्थ है। वह शुक्ति गुणरूप स्वार्थ अन्तर्भाव्य ही शुक्ल शब्द तथा शुक्लगुणविशिष्ट द्रव्य के बोध का जनक होता है। जहाँ पर विशिष्ट वाचक शब्द विशेषण के रूप में एकदेश को छोड़कर के विशेष्यरूप एकांश का बोधक होता है वहाँ पर जहद् तथा अजहत् लक्षणा होती है। जैस वह यह देवदत्त है। यहाँ पर दोनों पद के वाच्य में तत्काल तद्देशविशिष्ट में तत्कालतद्देशविशिष्ट मे ऐक्य की अनुपपत्ति से देवदत्तपिण्डरूप विशेष्यमात्रपत्व होता है।

20.5.7) तत्त्वमसि जहल्लक्षणा असङ्गति

तत्वमसि यहाँ पर जहत् लक्षणा सङ्गत नहीं है। गङ्गा में घोष(कुटिया) यहाँ पर तो जहत् लक्षणा ही सङ्गत होती है। गङ्गा तथा घोष में आधार तथा आधेय भाव ही है। और वह आधार तथा आधेय भाव अशेषत: विरुद्ध होता है। कारण यह है कि गङ्गा में घोष कभी भी रुक नहीं सकती है। इसलिए गङ्गा में घोष इस वाक्य के मुख्यार्थ का विरोध होने पर मुख्यार्थ का परित्याग करके लक्षणा के द्वारा उससे सम्बन्धित तीर में घोष के अवस्थान सम्भव से यहाँ पर जहत् लक्षणा स्वीकार की जाती है। यहाँ पर जैस गङ्गापद प्रवाहरूप स्वार्थ का परित्याग करके स्वसम्बन्ध तीर को लक्षित करते है वैसे ही तत्पद परोक्षत्वसर्वक्षत्वादि विशिष्ट स्वार्थ का परित्याग करके त्वं पदार्थ अर्थात् जीव चैतन्य को ही लक्षित करते है। इसी प्रकार से त्वम्पद से अपरोक्षत्वाल्पज्ञत्वादिविशिष्ट स्वार्थ का परित्याग करके तत्पदार्थ अर्थात् ईश्वर चैतन्य को लक्षित करे। इसलिए यहाँ पर जहत् लक्षणा हो ऐसी आशङ्का के होने पर कहतें है कि ऐसा नहीं है। मुख्यार्थ का विरोध होने पर ही मुख्यार्थ से सम्बन्धित जो अर्थ श्रुत नहीं है, उसके अश्रुत अर्थ में लक्षणा होती है। यह शास्त्र प्रसिद्ध है। गङ्गा मे घोष है यहाँ पर गङ्गा पद प्रवाह रूप स्वार्थ पद का

परित्याग करके तीर पदार्थ को लक्षित करता है, इस प्रकार से यह युक्तियुक्त होता है। कारण यह है कि गङ्गा तथा घोष में आधार तथा आधेय भाव सम्बन्ध रूप मुख्यार्थ का विरोध होता है। फिर यहाँ तीर्थ पद अश्रुत होता है। इसलिए लक्षणा के द्वारा अश्रुत तीर्थ पद का ज्ञान अपेक्षित है। लेकिन तत्वमसि यहाँ पर तत् तथा त्वम् दोनों पदों से ही उन दोनों के परोक्षत्व सर्वज्ञत्वादि विशिष्टापरोक्षत्वाल्पज्ञत्वादि विशिष्ट अर्थ श्रुत होता है। यहाँ पर अश्रुत पदार्थ नहीं होता है। जिस पदार्थ में जहल् लक्षणा स्वीकार की जाती है, उस लक्षणा के द्वारा श्रुत पदार्थ का ज्ञान अपेक्षित नहीं होता है। इसलिए तत्वमसि यहाँ पर जहत् लक्षणा स्वीकार नहीं की जाती है।

20.5.8) तत्त्वमसि यहाँ पर अजहत् लक्षणा की असङ्गति

शोणो धावति। यहाँ पर इस वाक्य में शोण के गुण में गमन के असम्भव होने से मुख्यार्थ का विरोध होता है। इसलिए उस वाक्य में श्रूयमाण शोणपद स्वार्थ का परित्याग किए बिना ही अपने अश्वादि को लक्षित करता है। इसलिए यहाँ पर अजहत् लक्षणा है सङ्गत होती है। लेकिन तत्वमसि यहाँ पर अजहत् लक्षणा भी सङ्गत नहीं होती है। कारण यह है कि तत्वमसि यहाँ पर परोक्षत्वसर्वज्ञत्व अपरोक्षत्व किञ्चिद् ज्ञत्वादि विशिष्ट चैतन्य के एकत्ववाक्यार्थ के विरुद्धत्व से परोक्षत्वसर्वज्ञत्वापरोक्षत्व किञ्चिज्ज्ञत्वादिविशिष्टांशा परित्याग के कारण उससे सम्बन्ध युक्त जिस किसी का भी लक्षितत्व सत्य होने पर परोक्षत्वसर्वज्ञत्वापरोक्षत्वाल्पज्ञत्वादिविशिष्टांशों के विरोध का परिहार नहीं कर सकते हैं। इसलिए विरोध के परिहार के असम्भव होने से यहाँ पर अजहत् लक्षणा सङ्गत नहीं होती है।

20.5.9) तत्त्वमसि यहाँ पर भागत्यागलक्षणा की सङ्गति

भागत्याग लक्षणा का दूसरा नाम जहत् अजहत् लक्षणा है। वह यह देवदत्त है, यहाँ पर जैसे तत्काल विशिष्ट के तथा एतत्कालविशिष्ट के विरुद्धांश का परित्याक करके लक्षणा के द्वारा अविरुद्ध देवदत्त रूप पिण्ड अवबोधित होता है। उसी प्रकार से तत्वमसि यहाँ पर भी अपरोक्षत्वाल्पज्ञत्वादिविशिष्ट अंश का परोक्षत्वसर्वज्ञत्वादिविशिष्टांश के विरुद्धांश का परित्याग करके लक्षणा के द्वारा अविरुद्ध अखण्डचैतन्यमात्र का बोध होता है। इसलिए यहाँ पर भागत्याग लक्षणा युक्तियुक्त होती है। साम्प्रदायिक लोग भी कहते हैं कि जो तत्त्वमसि वाक्य हैं यहाँ पर तत्पदवाच्य का परोक्षत्वासर्वज्ञत्वादि विशिष्ट के त्वम्पदवाच्य के द्वारा अपरोक्षत्व अल्पज्ञत्वादि विशिष्ट के साथ ऐक्य अनुपत्ति से ऐक्यसिद्धि के लिए ही स्वरुप में लक्षणा स्वीकार करना चाहिए।

20.5.10) तत्त्वमसि यहाँ पर कोई भी लक्षणा नहीं है।

वेदान्तपरिभाषाकार धर्मराजध्वरीन्द्र के मत में तो यहाँ लक्षणा ही नहीं होती है। तत्काल एतत्काल तद् देश एतद्देश आदि विशेषण विशिष्ट वाचक पदों का एकदेश एक विशेष्य देवदत्तस्वरूपपिण्डमात्र में जो तात्पर्य होता है वह यह देवदत्त है इस प्रकार की लक्षणा का यहाँ पर आश्रय लेना चाहिए। शक्ति के द्वारा ही देवदत्त पिण्ड स्वरूप का बोध होता है। नानार्थक शब्द के नानार्थ में शक्ति होती है , तो भी जिस अर्थ मे तात्पर्य निश्चित होता है। नानार्थक पद से उसके ही अर्थ संस्कारबोध से उस अर्थ की ही उपस्थिति होती है, न की अन्य किसी अर्थ की उपस्थिति होती है। विशिष्टोपस्थापक पदों के विशेष्य स्वरूप मात्र में तात्पर्य निश्चय होता है तो विशेष्यस्वरूप संस्कार का उद्बोध होता है। विशेष्य के स्वरूप विषय संस्कार सहकृत पदों के श्रवण ही विशेष्यस्वरूप की उपस्थिति होती है। सर्वज्ञत्वादि विशिष्ट वाचक पदों के विशेष्य अखण्ड ब्रह्म में यदि तात्पर्य होता है तो लक्षणा यहाँ पर स्वीकार्य नहीं होती है। तत्वमसि यहाँ पर तत् पद से तथा त्वम् पद से विशेष्य अखण्ड एक रस चैतन्य ही उपस्थापित होता है।

ध्यान दें:

उन दोनों चैतन्यों के अभेदान्वय में कोई भी बाधक नहीं होता है। यदि विशेष्यमात्र तात्पर्ययुक्त वाक्य में लक्षणा स्वीकार करते है तो घर में घट-घट में रूप, घट को लाओ इत्यादि वाक्यों में भी लक्षणा स्वीकार करना चाहिए। इसलिए धर्मराज ध्वरीन्द्र के द्वारा वेदान्तपरिभाषा मे कहा गया है कि "इसी प्रकार से तत्वमसि इस वाक्य में भी शक्ति के स्वातन्त्य तथा उपस्थित तत् तथा त्वम् पदार्थों के अभेदान्वयक बाध क भाव से लक्षणा नहीं है। नहीं तो घर में घट है, घट में रूप है। घट लाओ इत्यादि मे घटत्वगेहत्वादि की अभिमतान्वयबोध योग्यता के द्वारा वहाँ पर भी घटादि पदों के विशेष्यमात्रपरत्व मे लक्षणा ही होनी चाहिए।

अद्वैतवेदान्त सिद्धान्त मे तात्पर्य अनुपपत्ति ही लक्षणा होती है। गङ्गा मे घोष है यहाँ पर गङ्गा पद का गङ्गा के तीर पर यह तात्पर्य होता है। जब गङ्गा पद का जलप्रवाह रूप शक्यार्थ स्वीकार किया जाता है तब तात्पर्य की अनुपपत्ति होती है। इसलिए यहाँ पर लक्षणा स्वीकार की जाती है। तत्वमसि यहाँ पर तो जीवात्मा का तथा परमात्मा का ऐक्यरूप ही तात्पर्य के रूप में उपपद्य होता है। इसलिए जीवब्रह्मात्मैक्यरूपतात्पर्य की उपपत्ति की लक्षणा का यहाँ पर आश्रय नहीं लेना चाहिए।

अब कहते हैं कि मैं ईश्वर नहीं हूँ, मैं मनुष्य हूँ, इत्यादि प्रत्यक्ष के द्वारा एक ही, किञ्चिज्ञत्व सर्वज्ञत्वा परोक्षत्व परोक्षत्वादि विरुद्ध हेतु से जीव ब्रह्म का भेद स्पष्ट होता है। इसलिए मुण्डकोपनिषद में कहा गया है-

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अन्योऽनश्ननभिचाकशीति॥" (3/1/1) इति।

यहाँ पर भी जीव तथा ब्रह्म के भेद से कथन सुना जाता है। और भगवान् श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है-

"द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥" (15/16) इति।

इस प्रकार से गीता दिस्मृतियाँ भी जीव तथा ब्रह्म के भेद को बताती है। आनन्दमयाधिकरण में पठित "भेदव्यपदेशाच्च(1-1-17)" इस सूत्र में श्रोत जीव ब्रह्मभेद व्यपदेश कहलाता है। जीव स्वरूप से ब्रह्म से अभिन्न हो तो भी अविद्याकृत देह आदि उपाधियों के सम्बन्धवश ब्रह्मभिन्न में जीव होने पर धृलब्धव्यभाव सम्भव्य होता है इस प्रकार से "आत्मा अन्वेष्टव्यः" (बृहदारण्यकोपनिषद् 2.4.5), "आत्मलाभान्न परं विद्यते" (श्रीमद्भगवद्गीता 6-22) इत्यादि श्रुतियाँ भी स्मृतियों के अनुसार ही है।

अब कहते हैं की जीव तथा ब्रह्म का अज्ञान कृत कल्पित भेद स्वीकार करने से लब्धलब्धव्य भाव स्वीकार करने का अर्थ प्रसिद्ध होता है तो कहते हैं कि ऐसा भी नहीं है। परमार्थतः उन दोनों में अभेद कथन के लिए लब्धृलब्धव्य भाव कहा गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया हैं कि -"नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा" (3-7-23) इस प्रकार से। भगवान शङ्काराचार्य भी यह ही कहते हैं कि - "प्रतिषिध्यते एव तु परमार्थतः सर्वज्ञात् परमेश्वरात् अन्यः द्रष्टा श्रोता वा, नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा इत्यादिना" इति।

निश्चित रूप से परमार्थत रूप से जीव के ब्रह्म से अभिन्नत्व से जीव का अविद्याकल्पितत्व ईश्वर भी मिथ्या है तो अविद्या कल्पित जीव से परमेश्वर के भिन्न होने से ऐसा भी नहीं है। सभी जीव अविद्यायुक्त होते है इस प्रकार से सुरेश्वराचार्य के द्वारा नैष्कर्म्यसिद्धि के तृतीय अध्याय में 111 वाँ श्लोक है - "अहो धाष्ट्यमविद्यायाः न कश्चिदतिवर्तते।

प्रमाणं वस्त्वनादृत्य परमात्मेव तिष्ठति" इति।

ध्यान दें:

"रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति" इत्यादि श्रुति में रस इसको द्वितीयान्त पद के द्वारा तथा अयम् इसमें प्रथमान्त पद के द्वारा जीव तथा ब्रह्म के लब्ध लब्धव्यभाव के द्वारा दिशा निर्देश किये गये। अधिष्ठान व्यतिरिक्त कल्पितवस्तु के सत्त्व असिद्ध होने पर भी कल्पितवस्तु सत्ताव्यतिरेक से अधिष्ठानसत्तव प्रत्यक्ष ही सिद्ध होता है। इसलिए अविद्याकल्पितत्व से जीव का ब्रह्म अभिन्न अधिष्ठान्न अवश्य कहना चाहिए। बिम्ब व्यतिरेक से प्रतिबिम्ब के निरपेक्ष सत्व के अभाव से प्रतिबिम्ब बिम्ब से भिन्न होता है। अप्पयदीक्षित के द्वारा भी सिद्धान्तलेश सङ्ग्रह मे यही कहा गया है कि " इस प्रकार से मुक्त होने पर जीव तथा ईश्वर के प्रतिबिम्ब विशेष पक्षों में जो बिम्ब स्थानीय ब्रह्म होता है, वह मुक्त प्राप्य शुद्ध चैतन्य होता है। लेकिन प्रतिबिम्ब के बिम्ब से अभिन्नत्व होने पर भी बिम्ब प्रतिबिम्ब के द्वारा परिणमित नहीं होता है। इसलिए परमेश्व का मिथ्यात्व नहीं होता है। इसलिए तत्वमसि यह महावाक्य यदि अभेदार्थक होता है तो वेदस्मृति प्रत्यक्ष प्रमादि से विरुद्ध होता है। इसलिए तत्वमसि यह महावाक्य अभेदार्थ से भिन्नार्थक होता है, लेकिन इस आशङ्का के सत्य होते हुए भी वह नहीं होता है। कारण यह है कि भेद विषयक चक्षु आदि कारणों के दोष सम्भव होते हैं। दोष युक्त चक्षु आदि से मैं अन्धा हूँ, मैं मूक हूँ, इस प्रकार का प्रत्यक्ष होता है। उस प्रकार के प्रत्यक्ष में दोष सम्भव होते हैं। लेकिन अपौरुषेय वेद में दोष नहीं सम्भव नहीं होते हैं। प्रत्यक्ष की अपेक्षा से आगम का अपौरुषेयत्व से बलत्व होता है। अविद्या रूप मे ही होती है इसलिए कल्पित भेद भी मिथ्या ही होता है। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (छान्दोग्योपनिषद् 3. 14.1), "आत्मैवेदं सर्वं" (छान्दोग्योपनिषद् 7.25.2), "ब्रह्मैवेदममृतं" (मुण्डकोपनिषद् 2.2.11), "सदेव सोम्य इदमग्र आसीत्" (छान्दोग्योपनिषद् 3.2.1), "तत्त्वमसि" (छान्दोग्योपनिषद् 6.8.7), "अयमात्मा ब्रह्म" (बृहदारण्यकोपनिषद् 2.5.19) इत्यादि श्रुतियाँ वेदान्तों में प्रत्यगभिन्न एक ही ब्रह्म में तात्पर्य को दिखाती है। इसलिए वस्तुत: जीव तथा परमात्मा में अभेद ही होता है।

20.5.11) पञ्चदशीकारों के मत में तत्त्वम्पदार्थनिरूपण

विद्यारण्य स्वामी नें पञ्चदशी के महावाक्य विवेक प्रकरण में कहा है

"एकमेवाद्वितीयं सन्नामरूपविवर्जितम्।
सृष्टेः पुराऽधुनाप्यस्य तादृक्त्वं तदितीर्यते।।" (5/5) इति।

इस श्लोक का अर्थ है कि इस जगत् की सृष्टि से पूर्व एक ही अद्वितीय नामरूप रहित जो ब्रह्म था सृष्टि के बाद भी वैसा ही ब्रह्म रहेगा। उसी ब्रह्म का तद पद के द्वारा यहाँ पर वर्णन किया गया है, इस प्रकार से छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया हैं कि

"सदेव सोम्य इदमग्र आसीदेकमेव अद्वितीयम्।
तद्धैक आहुरसदेव इदमग्रासीदेकमेव अद्वितीयं तस्मात् असतः सज्जायत" (6/2/1) इति।

अब कहते हैं कि यदि ब्रह्म सत्य है तो श्रुतियों तथा स्मृतियों का व्यर्थ प्रसङ्ग हो जाएगा।

ब्रह्म न तो सत् होता है और न ही असत् इस प्रकार ऋग्वेद में कहा गया है। -

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीत् गहनं गभीरम्।।" (10/129/1) इति।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने भी कहा है

"ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।।" (13/12) इति।

इस प्रकार से न तो ब्रह्म सत् होता है और ना ही असत् होता है।

ध्यान दें:

"नेति नेति" (बृह.उ-4.4.22), "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" (कठोपनिषत्-1.3.15), "अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्" (बृह.उ-3.8.8) इस प्रकार से सभी उपनिषदों में ज्ञेयवस्तु ब्रह्म के वागगोचरत्व से अशेष शेष तथा प्रतिषेध के द्वारा निर्विशेषत्व को कहा गया है।

अब प्रश्न करते हुए कहते हैं की निर्विशेष ब्रह्म ज्ञेय होता है अथवा नहीं। यदि है तो अवश्य सत् होना चाहिए, और यदि नहीं हैं तो अवश्य ही असत् होना चाहिए। यहाँ पर कहते हैं कि इन्द्रिय गोचर वस्तु ही सत् तथा असद् के कारण बुद्धि गोचर होती है। घट के इन्द्रियों गोचरत्व के कारण ही घट है इस प्रकार से कहा जाता है। और घट के अभाव में इन्द्रिय अगोचरत्व के कारण घट नहीं है इस प्रकार से कहा जाता है। लेकिन अभाव को प्रत्यक्ष कैसे, तो धर्मराजध्वरीन्द्र वेदान्तपरिभाषा में कहते हैं कि - "ज्ञानकरणाजन्याभावानुभवासाधारणकारणमनुपलब्धिरूपं प्रमाणम्" अर्थात् ज्ञान करण अजन्य अवा भाव अनुभव असाधारणकारण अनुपलब्धिरूप प्रमाणम होता है । भगवान् शङ्कराचार्य के द्वारा भी श्री मद्भगवद्गीता के भाष्य में कहा गया है कि- "इदं तु ज्ञेयमतीन्द्रियत्वेन शब्दैकप्रमाणगम्यत्वात् न घटादिवत् उभयबुद्ध्यनुगतप्रत्ययविषयमित्यतो 'न सत् तन्नासत्' इत्युच्यते" अर्थात् यह तो ज्ञेय अतीन्द्रियत्व के द्वारा शब्दरूप एक प्रमाण के अगम्य से घटादि के समान नहीं होता है। इस प्रकार से अब विद्यारण्य स्वामी के द्वारा त्वम् पद के लक्ष्यार्थ को कहते है।

"श्रोतुर्देहेन्द्रियातीतं वस्त्वत्र त्वंपदेरितम्।
एकता ग्राह्यते असीति तदैक्यमनुभूयताम्॥" (5/6) इति।

इस श्लोक का यह अर्थ है कि श्रवण मनन निदिध्यासनादि के द्वारा जब श्रोता को महावाक्य का ज्ञान होता है। तब वह देहेन्द्रिय अद्यतीत कारण सूक्ष्म भूतों के शरीरों की साक्षिरूप से विद्यमान होती हुई वस्तु ही त्वम् पद से उक्त है। यहाँ पर असि इस पद के द्वारा प्रत्यक्ष आत्मा तथा परमात्मा का ऐक्य सूचित किया गया है।

20.6) अयमात्मा ब्रह्म

अथर्ववेद के माण्डुक्य उपनिषद में "अयमात्मा ब्रह्म" इस प्रकार का महावाक्य उपलब्ध होता है। सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार से है- "सर्वं ह्येतद्ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्" इति। यहाँ अयं इस शब्द से प्रत्यक् आत्मा के बारे में बताया गया है। विद्यारण्य स्वामी पञ्चदशी में कहतें है कि

"स्वप्रकाशापरोक्षत्वमयमित्युक्तितो मतम्।
अहंकारादिदेहान्तात्प्रत्यगात्मेति गीयते॥" (5/7) इति।

प्रत्यग् आत्मा स्वप्रकाश तथा परोक्षस्वभाव वाला होता है। यहाँ पर आत्मा के परोक्षत्व से व्यावर्त के लिए अपरोक्ष शब्द का प्रयोग विहित है। फिर घटादि के जैसे दृश्यत्व तथा व्यावर्त के लिए स्वप्रकाशत्व कहा गया है। घट का स्वप्रकाशत्व नहीं होता है। अहङ्कारादि जिस प्राणमन इन्द्रियदेहसंघात के होते हैं उसके अहङ्कारादि जिस प्राण मन इन्द्रिय संघात के होते हैं वह देहान्त कहलाता है। इन सभी को प्रत्यगधिष्ठानता तथा साक्षिता के कारण अन्तर आत्म कहते हैं। और विद्यारण्य स्वामी कहते है की

"दृश्यमानस्य सर्वस्य जगतस्तत्त्वमीर्यते।
ब्रह्मशब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम्॥" (5/8) इति।

जिस ब्रह्म का बोध होने पर इस मिथ्याभूत सभी आकाशादि प्रपञ्च का बाध होता है वह पारमार्थिक ब्रह्म यहाँ पर कहा गया है। उस स्वप्रकाश स्वरूप ब्रह्म के प्रकाश से हम सभी प्रकाशित होते है। इसलिए मुण्डकोपनिषद् में कहा है-

पाठ-20

महावाक्य वृत्ति विचार

ध्यान दें:

**"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति"** (2/2/11) इति।

पाठ सार

सभी वेदान्तशास्त्रों के द्वारा प्रतिपादित सूक्ष्म, निर्विशेष,निरवयव,निरञ्चन,तथा अस्तिमात्र सत् वह ब्रह्म यहाँ पर सद् इस प्रकार से कहा गया है। यह जगत् नामरूपक्रिया के समान विकृत जो उपलब्ध होता है उसकी उत्पत्ति से पूर्व उसकी नामरूपक्रिया विवर्जित थी। उत्पत्ति से पूर्व यह जगत् सत् शब्द बुद्धमात्र के द्वारा अवगम्य होता है। सृष्टि से पूर्व में इस जगत् के नामरूपादियों को ग्रहण नहीं कर सकते है। केवल जगत् का सत्त्वमात्र ही ग्रहण किया जा सकता है। जैस सुषुप्ति अवस्था में स्थित होकर सुषुप्ति से उठा हुआ व्यक्ति सत्त्वमात्र को ही समझता है। उसी प्रकार से यहाँ पर भी जानना चाहिए। कुलाल के घर में प्रातः किसी ने मिट्टी को देखा। वह ही व्यक्ति जब शाम के समय कुलाल के घर में आया तो वहाँ पर तब उसने वहाँ पर देखा घट आदि शराव वहाँ पर थे। उसके बाद जैसे वह पुरुष कहता है कि मृत्तिका ही यह है। उसी प्रकार सद् ही सौम्य रूप में सबसे पहले था। जिस प्रकार से मृत्तिका को घटादियों के द्वारा परिणमित कलालादि निमित्तकारण रूप के द्वारा देखे गये है उसी प्रकार से यहाँ सद् ब्रह्म के विना अन्यत कुछ और निमित्त कारण नहीं होता है। अतः सत् का सहकारी कारण दूसरा नहीं है। इसलिए सत् ब्रह्म ही अद्वितीय इस प्रकार से कह जाता है। वह ही ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप होता है। उस स्वयं प्रकाश स्वरूप ब्रह्म के ही प्रकाश से हम सभी प्रकाश मान होते है। जीव तथा ब्रह्म में अविद्याकल्पित भेद होने पर भी परमार्थ रूप से अभेद में ही सभी वेदों का तात्पर्य बताया गया है।

आपने क्या सीखा

- महावाक्य जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादन करते है।
- इसलिए इसमें तद्बुद्धि अध्यारोप होता है।
- अपवाद वस्तु में भासमान अवस्तु अज्ञानादि प्रपञ्च का वस्तुमात्रत्व होता है।
- अज्ञान सद् तथा असद् दोनों के द्वारा अनिर्वचनीय त्रिगुणात्मक, ज्ञानविरोधि तथा भावरूप जो कुछ होता है।
- परमात्मा अपरोक्षस्वप्रकाश स्वरूप होता है।
- सभी वेदान्त शास्त्रों से सूक्ष्मनिर्विशेष निरवयव,निरञ्जन सर्वानुस्यूत अस्ति मात्र सत् ब्रह्म वस्तु ही समझी जाती है।
- सत् का सहाकारी कारण दूसरा नहीं होता है। इसलिए सत् ब्रह्म ही अद्वितीय कहलाता है।
- जीवब्रह्म में अविद्याकल्पित भेद होने पर भी परमार्थ रूप से वह अभेद ही होता है।

पाठगत प्रश्न 20.1

1. छान्दोग्योपनिषद् में विद्यमान महावाक्य क्या है?
2. माण्डुक्योपनिषद् में विद्यमान महावाक्य क्या है?
3. ऋग्वेद किसे कहते हैं?

4. श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्म का सत् तथा असत् अनिर्वचनीयत्व प्रतिपादक श्लोक कौन-सा है?
5. ब्रह्म ही सभी को प्रकाशित करता है यहाँ पर कौन-सी श्रुति है?
6. अध्योरोपवाद किसे कहते हैं?
7. अपवाद किसे कहते हैं?
8. अज्ञान का लक्षण क्या हैं?
9. लक्षणा किसे कहते हैं?
10. भागत्याग लक्षणा किस प्रकार की होती है?
11. अज्ञान की त्रिगुणात्मक प्रतिपादिका श्रुति कौन-सी है?
12. लक्षणा के कितने भाग है तथा वे कौन कौन-से है?

पाठान्त प्रश्न

1. महावाक्य किसे कहते हैं?
2. जहत् लक्षणा क्या होती है?
3. धर्मराजध्वरीन्द्र के मत मे लक्षणा किसे कहते हैं?
4. अध्यारोप तथा अपवाद इन दोनों के द्वारा किस प्रकार से तत्वपदार्थ का शोधन होता है?
5. “तत्त्वमसि” इस महावाक्य में तत्पद का लक्ष्यार्थ तथा वाच्यार्थ लिखिए।
6. “तत्त्वमसि” इस महा वाक्य में त्वपद के लक्ष्यार्थ का तथा वाच्यार्थ का वर्णन कीजिए।
7. “अयमात्मा ब्रह्म” इस महावाक्य का पञ्चदशीकारों के मतानुसार प्रतिपादन कीजिए।
8. अजहत् लक्षणा किसे कहते हैं? उदाहरण के साथ लिखिए।
9. केवल लक्षणा किसे कहते हैं, उदाहरण पूर्वक लिखिए।
10. अपवाद किसे कहते हैं?
11. अज्ञान के अनिर्वचनीयत्व का प्रतिपादन कीजिए।
12. लक्षित लक्षणा किसे कहते हैं उदाहरण पूर्वक आलोचना कीजिए।
13. सम्बन्धत्रय के द्वारा “तत्त्वमसि” इस महावाक्य के अखण्डार्थत्व का विचार कीजिए।
14. “तत्त्वमसि” इस महावाक्य में लक्षणा सम्भव है अथवा नहीं वेदान्तपरिभाषाकार के मतानुसार विचार उपस्थापित कीजिए।
15. “तत्त्वमसि” इस महावाक्य में जहत् लक्षणा किस प्रकार से नहीं है?
16. “तत्त्वमसि” इस महावाक्य में जहत् लक्षणा किस प्रकार से सङ्गत नहीं है।?

ध्यान दें:

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 20.1

1. "तत्त्वमसि" यह महावाक्य है।
2. "अयमात्मा ब्रह्म" इस प्रकार से।
3. जिसके द्वारा स्तुति की जाती है वह ऋचा कहलाती हैं ऋचाओं का समूह ऋग्वेद कहलाता है।
4. "ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते। अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।" (13/12) इति।
5. मुण्डकोपनिषद् में कहा गया हैं कि "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" (2/2/11) इस प्रकार से।
6. वस्तु में अवस्तु का आरोप ही अध्यारोप होता है।
7. अपवाद वस्तु में भास मान अवस्तु अज्ञानादि का प्रपञ्चमात्र होता है।
8. अज्ञान सत् तथा असत् के द्वारा अनिर्वचनीय त्रिगुणात्मक ज्ञानविरोधी भावरूप जो कुछ होता है।
9. वेदान्तपरिभाषाकार के मतानुसार तात्पर्य अनुपपत्ति ही लक्षणा है।
10. जहाँ पर विशिष्ट वाचक शब्द विशेषणरूप के एकदेश को छोड़कर के विशेष्य रूप एकदेश का बोधक होता है वहाँ भागत्यागलक्षणा होती है।
11. श्वेताश्वतरोपनिषद में यह कहा है कि "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।" (4/5) इति।
12. लक्षणा दो प्रकार की होती है। केवल लक्षणा तथा लक्षित लक्षणा। प्रकारान्तर से लक्षणा तीन प्रकार की होती है। जहत् लक्षणा अजहत् लक्षणा तथा जहत् अजहत् लक्षणा।